बिहार राज्य

बनाम

डी. एन. गांगुली एवं अन्य

(वेंकटरामा अय्यर, गजेन्द्रगडकर और ए. के. सरकार, न्यायमूर्तिगण)

औद्योगिक विवाद—औद्योगिक अधिकरण के समक्ष लंबित न्यायनिर्णयना का अतिष्ठापन—वैधता—उपयुक्त सरकार की शक्तियाँ—औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम XIV), धारा 10(1)—सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 (1897 का अधिनियम 10), धारा 21।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10(1) उपयुक्त सरकार को यह शक्ति प्रदान नहीं करती कि वह उसके अंतर्गत किए गए संदर्भ को, जो किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में उस उद्देश्य के लिए गठित अधिकरण के समक्ष निर्णयाधीन है, निरस्त या अतिष्ठित कर दे। न ही सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 की धारा 21 ऐसी शक्ति को आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान करती है।

यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 21 में निहित व्याख्या का नियम किसी विधि के प्रावधानों पर तभी लागू हो सकता है जब उस प्रावधान का विषय-वस्तु, संदर्भ और प्रभाव ऐसे अनुप्रयोग के साथ किसी प्रकार असंगत न हो। इस कसौटी पर परखा जाए तो यह स्पष्ट है कि उक्त धारा का औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) पर कोई अनुप्रयोग नहीं है।

मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम उनके कर्मचारी, [1954] एस.सी.आर. 465, अप्रयोज्य ठहराया गया।

स्ट्रॉबोर्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम गुट्टा मिल श्रमिक संघ, [1953] एस. सी. आर. 439 ने समझाया।

कपड़ा मजदूर संघ, अमृतसर बनाम पंजाब राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 1957।255 और *हेन्द्रनाथ बोस बनाम द्वितीय औद्योगिक न्यायाधिकरण,* [1958] 2 एल.एल.जे. 198 अस्वीकृत किया गया ।

दक्षिण भारतीय संपदा श्रम संबंध संगठन बनाम मद्रास राज्य, ए.आई.आर. 1955 45, विशिष्ट।

नतीजतन, जहाँ उपयुक्त सरकार ने दो अधिसूचनाओं के माध्यम से, जो एक के बाद एक जारी की गई थीं, दो औद्योगिक विवादों—जो दो समूहों के कामगारों और उनके नियोक्ता के बीच थे—को उस उद्देश्य के लिए गठित औद्योगिक अधिकरण को न्यायनिर्णयन संदर्भित किया, और तत्पश्चात एक तीसरी अधिसूचना द्वारा पूर्ववर्ती दोनों अधिसूचनाओं का अतिष्ठापन किया कर दिया, तथा उच्च न्यायालय ने कामगारों और नियोक्ता दोनों द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत दायर आवेदनों पर उस अधिसूचना को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण का विनिर्दिष्ट आदेश याचिका जारी किया और परमादेश के विनिर्दिष्ट आदेश याचिका द्वारा अधिकरण को दोनों संदर्भों पर शीघ्रतापूर्वक कार्यवाही करने का निर्देश दिया, और राज्य सरकार ने अपील की:

अभिनिर्धारित: आक्षेपित अधिसूचना अमान्य और अधिकार से बाहर थी और उच्च न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि की जानी चाहिए।

अभिनिर्धारित: आगे यह भी अभिनिर्धारित किया गया, यह कि चूँकि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत किया गया संदर्भ एक प्रशासनिक कार्य के स्वरूप का

है, अतः अधिक उपयुक्त विनिर्दिष्ट आदेश याचिका परमादेश का होगा, न कि उत्प्रेषण के स्वरूप का।

मद्रास राज्य बनाम सी. पी. सारथी, [1953] एस.सी.आर. 334, संदर्भित।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 1957 की दीवानी अपील सं. 358 और 359।

विशेष अनुमति द्वारा अपीलें, पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 4 अप्रैल, 1956 के निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध, एम. जे. सी. संख्याएँ 546 और 590, वर्ष 1955 में।

जे. एन. बनर्जी और आर. सी. प्रसाद, अपीलकर्ता की ओर से (दोनों अपीलों में)।

बसंत चंद्र घोष और पी. के. चटर्जी, उत्तरदाता संख्या 1-10 तथा 12-57 के लिए और दीवानी अपील सं. 358/57 में

एम. सी. सीतलवाड़, भारत के भारत के महान्यायवादी, नूनी चक्रवर्ती और बी. पी. माहेश्वरी। दीवानी अपील सं. 359/57 में उत्तरदाता संख्या 59 के लिए।

आर पट्टनायक, दीवानी अपील सं. 359/57 में उत्तरदाता संख्या 63 के लिए।

22 अगस्त, 1958। न्यायालय का निर्णय

गजेन्द्रगडकर न्यायमूर्ति- जहाँ किसी औद्योगिक विवाद को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम 14) की धारा 10(1)(घ) के अंतर्गत उपयुक्त सरकार द्वारा न्यायानिर्णयन हेतु किसी अधिकरण को संदर्भित किया गया हो, क्या उक्त सरकार उस संदर्भ को, जो उस उद्देश्य के लिए गठित अधिकरण के समक्ष विचाराधीन है, अतिष्ठापित कर सकती है? यही संक्षिप्त प्रश्न है जो इन दो विशेष अनुमति अपीलों में विचारार्थ प्रस्तुत है। यह प्रश्न इस प्रकार उत्पन्न हुआ: 8 अक्टूबर, 1954 को, अधिसूचना संख्या III/डी.आई-1602/54-एल-15225 द्वारा, बिहार सरकार ने बाटा जूता कंपनी लिमिटेड,

डिगबाघाट (पटना) के प्रबंधन और उनके 31 कामगारों (जो अनुलग्नक 'क' में उल्लिखित हैं) के बीच एक औद्योगिक विवाद को, अधिनियम की धारा 7 के साथ पठित धारा 10(1) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, संदर्भित किया। विवाद यह था कि संबंधित कामगारों की सेवामुक्ति न्यायसंगत थी या नहीं; यदि नहीं, तो क्या वे पुनर्नियोजन या किसी अन्य अनुतोष के अधिकारी हैं। इस विवाद के न्यायानिर्णयन के लिए श्री अली हसन को एकमात्र सदस्य के रूप में नियुक्त कर एक औद्योगिक अधिकरण गठित किया गया। यह संदर्भ संख्या 10, वर्ष 1954 था। इसके पश्चात, 15 जनवरी, 1955 को, अधिसूचना संख्या III/डी.आई-1601/55-एल-696 द्वारा, उसी बाटा कंपनी और उसके अन्य 29 कामगारों के बीच एक समान औद्योगिक विवाद को बिहार सरकार ने उसी अधिकरण को संदर्भित किया। यह संदर्भ संख्या 1, वर्ष 1955 था। जब इन दोनों संदर्भों के संबंध में कार्यवाहियाँ, जिन्हें अधिकरण ने समेकित कर दिया था, उसके समक्ष लंबित थी और कुछ प्रगति भी हो चुकी थी, तब बिहार सरकार ने 17 सितंबर, 1955 को तीसरी अधिसूचना संख्या III/डी.आई-1601/55-एल-13028 जारी की, जिसके द्वारा उसने पूर्व की दोनों अधिसूचनाओं को अतिष्ठित करने, उक्त दोनों विवादों को एक ही विवाद में समेकित करने, दोनों विवादों से संबंधित कामगारों के दोनों समूहों को सम्मिलित करने, बाटा मजदूर यूनियन को भी विवाद में पक्षकार के रूप में जोड़ने तथा इसे पुनः श्री अली हसन को एकमात्र सदस्य के रूप में औद्योगिक अधिकरण के समक्ष संदर्भित करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार अधिकरण को जो विवाद संदर्भित किया गया, वह था— "क्या अनुलग्नक 'ख' में उल्लिखित 60 कामगारों की सेवामुक्ति न्यायसंगत है या अनुचित; और यदि कोई हो, तो वे किस प्रकार की राहत के अधिकारी हैं?" इस अधिसूचना की प्राप्ति पर, अधिकरण ने 19 सितंबर, 1955 को आदेश पारित कर, पूर्ववर्ती दोनों संदर्भों की सुनवाई, जो 3 अक्टूबर, 1955 के लिए निर्धारित थी, निरस्त कर दी और निर्देश दिया कि उक्त संदर्भों की फाइलें बंद कर दी जाएँ।

इसके पश्चात बाटा कंपनी और उसके कामगारों ने संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अंतर्गत पटना उच्च न्यायालय के समक्ष दो पृथक आवेदन प्रस्तुत किए और यह प्रार्थना की कि अंतिम अधिसूचना को अवैध तथा अधिकार-क्षेत्र से परे होने के कारण अभिखंडित किया जाए। इन दोनों आवेदनों को क्रमशः एम. जे. सी. संख्या 546 और 590, वर्ष 1955 के रूप में पंजीकृत किया गया। 4 अप्रैल, 1956 को उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि बिहार सरकार के पास पूर्ववर्ती अधिसूचनाओं को अतिष्ठित करने की कोई शक्ति या अधिकार नहीं था, दोनों आवेदनों को स्वीकार किया और *उत्प्रेषण* के स्वरूप में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका जारी कर 17 सितंबर, 1955 की आक्षेपित अधिसूचना को अभिखंडित कर दिया, तथा परमादेश के स्वरूप में एक विनिर्दिष्ट आदेश याचिका जारी कर औद्योगिक अधिकरण को यह निर्देश दिया कि वह संदर्भ प्रकरण संख्या 10, वर्ष 1954 तथा संख्या 1, वर्ष 1955 में शीघ्रता से कार्यवाही करे और उन्हें विधि के अनुसार निष्पन्न करे। इस आदेश के विरुद्ध बिहार सरकार ने 26 जून, 1956 को इस न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त की। इसी प्रकार ये दोनों वर्तमान अपीलें हमारे समक्ष निपटान हेतु प्रस्तुत हुई हैं। दोनों अपीलों में अपीलकर्ता बिहार राज्य है और उत्तरदाता क्रमशः बाटा कंपनी तथा उसके कामगार हैं। अपीलकर्ता की ओर से हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि पटना उच्च न्यायालय ने यह मानने में त्रुटि की कि बिहार सरकार के पास पूर्ववर्ती दो अधिसूचनाओं को अपास्त करने तथा विवाद को अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत औद्योगिक अधिकरण के समक्ष न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित करने की कोई शक्ति या अधिकार नहीं था।

आक्षेपित अधिसूचना की पृष्ठभूमि को समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि कंपनी के दीघा स्थित कारखाने के कामगारों ने द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में एक संघ का गठन किया। उक्त संघ के अध्यक्ष श्री जॉन थे और इसके महासचिव श्री फतेह नारायण सिंह थे। 22 जून, 1947 को कंपनी ने उक्त संघ के साथ एक सामूहिक समझौता किया और पारस्परिक सहमति से औद्योगिक रोजगार (स्थायी

आदेश) अधिनियम, 1946 के अंतर्गत प्रमाणित स्थायी आदेश और नियम निर्धारित किए गए। संघ को कंपनी के कामगारों के लिए एकमात्र और विशिष्ट सामूहिक सौदेबाजी एजेंसी के रूप में मान्यता दी गई। 1954 के अंत की ओर संघ के दो समूह बन गए और उनके बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ गई। एक समूह का नेतृत्व श्री फतेह नारायण सिंह कर रहे थे और दूसरे का श्री बारी। 22 जनवरी, 1954 को संघ ने अपने महासचिव श्री फतेह नारायण सिंह के माध्यम से कंपनी को 24 फरवरी, 1954 से प्रभावी होने वाला "स्लो डाउन नोटिस" दिया, और 6 फरवरी, 1954 को श्री बारी ने स्वयं को संघ का अध्यक्ष बताते हुए अपने समर्थकों से 23 फरवरी, 1954 से हड़ताल पर जाने का आह्वान किया। श्री फतेह नारायण सिंह द्वारा की गई मांगों के कारण अधिनियम के अंतर्गत सुलह कार्यवाही प्रारंभ हुई और 8 फरवरी, 1954 को विधिवत् दर्ज समझौते के साथ समाप्त हुई। उक्त समझौते के बावजूद कुछ कामगार, जिनमें विवादित साठ कामगार भी सम्मिलित थे जो श्री बारी का समर्थन कर रहे थे, 23 फरवरी, 1954 को अवैध हड़ताल पर चले गए, जबकि संघ के सदस्य होने के कारण वे उस समझौते से बंधे हुए थे। अधिकांश कामगार हड़ताल के विरोध में थे और वास्तव में 16 फरवरी, 1954 को 500 कामगारों द्वारा हस्ताक्षरित एक पत्र, जिसमें उन्होंने स्वयं को हड़ताल से अलग बताया था, कंपनी को प्राप्त हुआ। कंपनी से अनुरोध किया गया कि इन कामगारों को अपने कर्तव्यों का पालन करने हेतु उपयुक्त व्यवस्था की जाए। हड़ताल आंशिक रूप से ही सफल रही, क्योंकि दीघा स्थित कारखाने में कार्यरत 854 कामगारों में से लगभग 500 कामगार हड़ताली कामगारों की धमकियों के बावजूद कारखाने में उपस्थित हुए। इस हड़ताल को अपीलकर्ता द्वारा अधिनियम की धारा 23(ग) के अंतर्गत अवैध घोषित किया गया। तत्पश्चात कंपनी ने हड़ताली कामगारों को आरोप-पत्र जारी किए और अंततः 274 कामगारों, जिनमें विवादित साठ कामगार भी सम्मिलित थे, को सेवा से बर्खास्त कर दिया। इसके बाद संघ ने कंपनी के साथ वार्ताएँ कीं, जिसके परिणामस्वरूप यह सहमति बनी कि 110 हड़ताली कामगारों को उसी प्रकार पुनः नियोजित किया जाएगा, जिस प्रकार 76

हड़ताली कामगारों को पहले ही पुनः नियोजित किया जा चुका था। यह भी सहमति बनी कि 30 हड़ताली कामगार सेवा से बर्खास्त ही रहेंगे और उन्हें रोजगार या किसी लाभ के लिए पात्र नहीं माना जाएगा। शेष 30 हड़ताली कामगारों के संबंध में कंपनी ने उनके पुनर्नियोजन के मामलों पर बाद में विचार करने पर सहमति व्यक्त की। इन वार्ताओं के दौरान विवादित साठ कामगारों ने न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही सामूहिक रूप से प्रबंधन के समक्ष पुनर्नियोजन की कोई मांग की, और न ही उनके मामले को किसी अन्य संगठन या कामगारों के किसी निकाय द्वारा उठाया गया। परिणामस्वरूप, संघ के दृष्टिकोण से, कंपनी द्वारा बर्खास्त किए गए सभी हड़ताली कामगारों के संबंध में विवाद, कंपनी और संघ के बीच हुए समझौते के कारण समाप्त हो गया।

उक्त समझौते के बावजूद, श्री सिन्हा, जो कि सुलह अधिकारी थे, ने 3 सितम्बर, 1954 को कंपनी को लिखा कि वे बर्खास्त किए गए कुछ कामगारों के संबंध में सुलह कार्यवाही करना चाहते हैं। साठ कामगारों द्वारा उठाया गया विवाद किसी भी संगठन या कामगारों के किसी निकाय द्वारा प्रायोजित नहीं था। वास्तव में, संघ के सचिव ने 22 सितम्बर, 1954 को श्रम आयुक्त को लिखा कि वे साठ कामगारों के कथित विवाद को न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित किए जाने का कड़ा विरोध करते हैं। इन्हीं परिस्थितियों में अपीलकर्ता ने 8 अक्टूबर, 1954 और 15 जनवरी, 1955 को पहली दो अधिसूचनाएँ जारी कीं।

30 मई, 1955 को संघ ने अधिकरण के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि अधिकांश कामगार विवादित साठ कामगारों के पुनर्नियोजन के विरोध में हैं और इस कारण से उसका अधिकरण के समक्ष चल रही कार्यवाही में हित है। अन्य कामगारों द्वारा भी अधिकरण के समक्ष दो आवेदन प्रस्तुत किए गए, जिनमें यह प्रार्थना की गई कि उन्हें कार्यवाही में सम्मिलित किया जाए, इस आधार पर कि वे उन

कामगारों के पुनर्नियोजन के विरोध में हैं जिनके मामले अधिकरण के समक्ष लंबित हैं। इन सभी आवेदनों को अधिकरण द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि इसके पश्चात श्री फतेह नारायण सिंह ने बिहार सरकार के श्रम विभाग से संपर्क किया, और स्पष्टतः उन्हीं द्वारा किए गए प्रतिवेदन के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता ने तीसरी अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा पहली दो अधिसूचनाओं को अतिष्ठित करते हुए संपूर्ण विवाद को पुनः औद्योगिक अधिकरण के समक्ष संदर्भित किया गया तथा श्री फतेह नारायण सिंह के संघ को कार्यवाही में एक पक्ष के रूप में जोड़ा गया। संक्षेप में यही वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिसूचना की उत्पत्ति है।

अपीलकर्ता की ओर से डॉ. बनर्जी ने हमारे समक्ष यह तर्क प्रस्तुत किया है कि अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत उपयुक्त सरकार की शक्तियाँयों के प्रश्न पर विचार करते समय उन तथ्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है, जिनके कारण पहली दो अधिसूचनाओं का निरस्तीकरण किया गया और तीसरी आक्षेपित अधिसूचना जारी की गई। उनका कहना है कि तीसरी अधिसूचना जारी करते समय अपीलकर्ता ने सद्भावना के साथ तथा केवल निष्पक्षता और न्याय के हित में कार्य किया; उसने यह निष्कर्ष निकाला कि यह आवश्यक है कि संबंधित विवादों का औद्योगिक अधिकरण द्वारा न्यायानिर्णयन किए जाने से पूर्व संघ को भी सुना जाए, और यह कि औद्योगिक शांति और सौहार्द के हित में तथा सुविधा की दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त होगा कि विवाद को अधिक व्यापक और समेकित रूप में अधिकरण को संदर्भित किया जाए, ताकि उसमें रुचि रखने वाले सभी पक्ष अधिकरण के समक्ष उपस्थित हो सकें। हमारे मत में, डॉ. बनर्जी द्वारा जिस *सद्भावना* पर अवलंबन किया गया है, वह वास्तव में अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत अपीलकर्ता की शक्तियों के निर्धारण के लिए प्रासंगिक नहीं है। यदि अपीलकर्ता के पास धारा 10(1) के अंतर्गत जारी अधिसूचना को निरस्त करने का अधिकार होता और यदि निरस्तीकरण अधिसूचना की

वैधता को दुर्भावना के आधार पर चुनौती दी जाती, तो अपीलकर्ता के उद्देश्यों की जांच करना प्रासंगिक और आवश्यक हो सकता था। किन्तु यदि अपीलकर्ता के पास धारा 10(1) के अंतर्गत जारी अधिसूचना को निरस्त या वापस लेने का कोई अधिकार ही नहीं है, तो अपीलकर्ता की *सद्भावना* उस आक्षेपित निरस्तीकरण को वैध नहीं बना सकती। इसी कारण, हमारे विचार में, अपीलकर्ता अपने आचरण की कथित *सद्भावना* पर अपने तर्क आधारित नहीं कर सकता।

डॉ. बनर्जी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि अधिनियम उपयुक्त सरकार को अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए किसी संदर्भ को निरस्त या अतिष्ठित करने की कोई शक्ति स्पष्ट रूप से प्रदान नहीं करता। तथापि, वे यह तर्क देते हैं कि ऐसे संदर्भ को निरस्त या अतिष्ठित करने की शक्ति निहित मानी जानी चाहिए, और अपने इस तर्क के समर्थन में वे सामान्य उपबंध अधिनियम, 1897 (1897 का अधिनियम 10) की धारा 21 के प्रावधानों पर निर्भर करते हैं। धारा 21 यह उपबंध करती है कि "जहाँ किसी केंद्रीय अधिनियम या विनियम द्वारा अधिसूचनाएँ, आदेश, नियम या उपविधियाँ जारी करने की शक्ति प्रदान की जाती है, वहाँ उस शक्ति में उसी प्रकार, तथा समान स्वीकृति और शर्तों (यदि कोई हों) के अधीन, ऐसी अधिसूचनाओं, आदेशों, नियमों या उपविधियों को जोड़ने, संशोधित करने, परिवर्तित करने या निरस्त करने की शक्ति भी सम्मिलित होगी।" यह विधि में सुव्यवस्थित है कि यह धारा व्याख्या का एक नियम प्रतिपादित करती है और यह प्रश्न कि यह किसी विशेष अधिनियम के प्रावधानों पर लागू होती है या नहीं, उस अधिनियम के संबंधित प्रावधान के विषय-वस्तु, संदर्भ तथा प्रभाव पर निर्भर करेगा। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक होगा कि अधिनियम की योजना, उसका उद्देश्य तथा उसके सभी प्रासंगिक और महत्वपूर्ण प्रावधानों का सावधानीपूर्वक परीक्षण किया जाए, तब यह निर्धारित किया जा सकेगा कि क्या धारा 21 द्वारा प्रतिपादित व्याख्या के नियम के अनुप्रयोग से अपीलकर्ता का यह तर्क उचित ठहराया जा सकता है कि धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए

संदर्भ को निरस्त करने की शक्ति उपयुक्त सरकार में आवश्यक निहितार्थ द्वारा निहित मानी जा सकती है। यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संबंधित प्रावधानों का संदर्भ और प्रभाव उक्त व्याख्या के नियम के अनुप्रयोग के प्रतिकूल है, तो अपीलकर्ता उक्त धारा की सहायता लेने का अधिकारी नहीं होगा। अतः हमें अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का परीक्षण करना होगा।

यह स्पष्ट है कि अधिनियम की नीति नियोक्ताओं और उनके कामगारों के बीच अच्छे संबंधों को सुनिश्चित और बनाए रखने तथा औद्योगिक शांति और सौहार्द को बनाए रखने की है। इसी उद्देश्य से अधिनियम की धारा 3 कार्य समितियों की स्थापना का प्रावधान करती है, जिनका कर्तव्य नियोक्ताओं और कामगारों के बीच सद्भावना और अच्छे संबंधों को सुनिश्चित और बनाए रखने के उपायों को प्रोत्साहित करना है। यदि कार्य समिति नियोक्ता और उसके कामगारों के बीच उत्पन्न विवादों का निपटारा करने में असमर्थ रहती है, तो सुलह अधिकारी और सुलह बोर्ड पक्षकारों को उनके विवादों के समाधान में सहायता प्रदान करते हैं। धाराएँ 3, 4, 5, 12 और 13 अधिनियम द्वारा परिकल्पित इस व्यवस्था के संचालन का उल्लेख करती हैं। केवल तब, जब सुलह तंत्र पक्षकारों के बीच समझौता कराने में असफल रहता है, अधिनियम औद्योगिक विवादों के अनिवार्य न्यायानिर्णयन की व्यवस्था श्रम न्यायालयों और अधिकरणों द्वारा अंतिम विकल्प के रूप में करता है। उपयुक्त सरकार को धारा 7 और धारा 7क के अधीन और उनके प्रावधानों के अनुसार श्रम न्यायालयों और अधिकरणों का गठन करने का अधिकार दिया गया है। अनिवार्य न्यायानिर्णयन के संबंध में धारा 10 के अंतर्गत उपयुक्त सरकार को यह निर्णय करने का व्यापक विवेकाधिकार दिया गया है कि नियोक्ता और उसके कर्मचारियों के बीच विवाद को बोर्ड, न्यायालय या अधिकरण को संदर्भित किया जाए या नहीं। धारा 10(1)(घ) अन्य बातों के साथ यह उपबंध करती है कि जहाँ उपयुक्त सरकार की यह राय हो कि कोई औद्योगिक विवाद विद्यमान है या आशंकित है, तो वह किसी भी समय लिखित आदेश द्वारा उस विवाद को न्यायानिर्णयन हेतु अधिकरण

को संदर्भित कर सकती है। औद्योगिक अधिकरण को संदर्भित किए जाने की पूर्वशर्त यह है कि उपयुक्त सरकार इस बात से संतुष्ट हो कि कोई औद्योगिक विवाद विद्यमान है या आशंकित है। प्रत्येक उस मामले में जहाँ पक्षकार औद्योगिक विवाद के अस्तित्व का आरोप लगाते हैं, धारा 10(1) के अंतर्गत संदर्भ नहीं किया जाएगा; यह केवल तब किया जाएगा जब उपयुक्त सरकार की व्यक्तिपरक संतुष्टि की कसौटी पूरी हो। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि औद्योगिक विवादों को अधिकरण के समक्ष न्यायानिर्णयन हेतु भेजने के प्रश्न में उपयुक्त सरकार को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है। किन्तु, एक बार जब उपयुक्त सरकार द्वारा लिखित आदेश पारित कर औद्योगिक विवाद को धारा 10(1) के अंतर्गत अधिकरण को न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित कर दिया जाता है, तो अधिकरण के समक्ष कार्यवाही प्रारंभ मानी जाती है और यह उस दिन समाप्त मानी जाती है जिस दिन अधिकरण द्वारा दिया गया निर्णय धारा 17क के अंतर्गत प्रवर्तनीय हो जाता है। यह धारा 20(3) का प्रभाव है। यह प्रावधान दर्शाता है कि विवाद के अधिकरण को संदर्भित किए जाने के पश्चात, संदर्भ कार्यवाही के दौरान विवाद पर क्षेत्राधिकार अधिकरण का ही होता है और वही उस पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है। उपयुक्त सरकार अधिकरण के समक्ष लंबित न्यायानिर्णयन के संदर्भ में केवल धारा 10(5) के अंतर्गत ही कार्य कर सकती है, जो उसे उक्त प्रावधान में वर्णित शर्तों के अधीन लंबित विवाद में अन्य पक्षकारों को जोड़ने का अधिकार देती है। अतः यह उचित होगा कि यह माना जाए कि धारा 10(5) के अंतर्गत आने वाले मामलों को छोड़कर, उपयुक्त सरकार संदर्भ कार्यवाहियों से बाहर रहती है, जो स्वयं अधिकरण के नियंत्रण और क्षेत्राधिकार में होती हैं। निर्णय दिए जाने के पश्चात भी, धारा 17(1) के अंतर्गत उपयुक्त सरकार पर यह दायित्व है कि वह उक्त निर्णय को उसकी प्राप्ति की तिथि से तीस दिनों के भीतर प्रकाशित करे। धारा 17 की उपधारा (2) यह कहती है कि धारा 17(1) के अंतर्गत प्रकाशित निर्णय, धारा 17क के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा और उसे किसी भी न्यायालय में किसी भी प्रकार से चुनौती नहीं दी जा सकेगी। धारा

19(3) यह उपबंध करती है कि कोई निर्णय, धारा 19 के अन्य प्रावधानों के अधीन रहते हुए, धारा 17क के अंतर्गत प्रवर्तनीय होने की तिथि से एक वर्ष की अवधि तक प्रभावी रहेगा। यह सत्य है कि धारा 17क और 19 उपयुक्त सरकार को निर्णय के प्रावधानों में संशोधन करने या उसके प्रभाव की अवधि को सीमित करने की शक्तियाँ प्रदान करती हैं, किन्तु इन प्रावधानों का विस्तार से उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। अधिनियम के अध्याय III और IV के प्रावधानों की रूपरेखा से यह प्रतीत होता है कि संदर्भ कार्यवाहियों को पूर्णतः अधिनियम के अंतर्गत गठित अधिकरणों के क्षेत्राधिकार में छोड़ दिया गया है और ऐसे अधिकरणों के निर्णयों को पक्षकारों के बीच बाध्यकारी बनाया गया है, केवल धारा 17क और 19 के अंतर्गत उपयुक्त सरकार को प्रदत्त विशेष शक्तियों के अधीन। निस्संदेह, इस विषय में पहल उपयुक्त सरकार की होती है। केवल वही लिखित आदेश द्वारा औद्योगिक विवाद को अधिकरण के न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित करती है, तभी संदर्भ कार्यवाही प्रारंभ हो सकती है; किन्तु संबंधित प्रावधानों की रूपरेखा प्रथम दृष्टया उपयुक्त सरकार में धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ को निरस्त करने की किसी भी शक्ति के अस्तित्व के साथ असंगत प्रतीत होती है।

धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए किसी संदर्भ को निरस्त करने के लिए सरकार द्वारा दावा की गई शक्ति अधिनियम के कुछ अन्य प्रावधानों के साथ भी असंगत प्रतीत होती है। धारा 10 के उपबंध में यह प्रावधान किया गया है कि जब धारा 22 के अंतर्गत कोई सूचना दी गई हो, तब सार्वजनिक उपयोगिता सेवा से संबंधित विवाद को उपयुक्त सरकार द्वारा संदर्भित किया जाएगा, जब तक कि वह यह न माने कि उक्त सूचना तुच्छ या दुर्भावनापूर्ण रूप से दी गई है, या कि ऐसा संदर्भित करना अव्यवहारिक होगा। यह उपबंध दर्शाता है कि सार्वजनिक उपयोगिता सेवाओं से संबंधित विवादों के संबंध में सामान्यतः सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह उन्हें न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित करे। ऐसे मामले में, यदि सरकार संदर्भ कर देती है, तो यह समझना कठिन है कि अधिकरण के समक्ष उक्त संदर्भ की

कार्यवाही लंबित रहते हुए सरकार उस संदर्भ को निरस्त कर सके और इस संबंध में अपने मूल आदेश को अतिष्ठित कर सके। धारा 10 की उपधारा (2) उस स्थिति से संबंधित है जहाँ औद्योगिक विवाद के पक्षकार, निर्धारित रीति से, संयुक्त रूप से या पृथक-पृथक, विवाद को उपयुक्त प्राधिकारी के समक्ष संदर्भित करने के लिए उपयुक्त सरकार को आवेदन करते हैं, और यह प्रावधान करती है कि ऐसे मामले में यदि उपयुक्त सरकार इस बात से संतुष्ट हो कि आवेदन करने वाले व्यक्ति प्रत्येक पक्ष के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हैं, तो वह उसी अनुसार संदर्भ करेगी। ऐसे मामले में सरकार को केवल इस बात से संतुष्ट होना होता है कि संदर्भ की मांग प्रत्येक पक्ष के बहुमत द्वारा की गई है, और एक बार यह शर्त पूरी हो जाने पर, सरकार पर विवाद को औद्योगिक न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित करने का दायित्व होता है। ऐसी स्थिति में यह कल्पना करना असंभव है कि सरकार धारा 10(2) के अंतर्गत किए गए किसी संदर्भ को निरस्त करने की शक्ति का दावा कर सके। वास्तव में, अपने तर्कों के दौरान डॉ. बनर्जी ने भी निष्पक्ष रूप से यह स्वीकार किया कि धारा 10(2) के अंतर्गत किए गए संदर्भ के संबंध में निरस्तीकरण की निहित शक्ति के दावे को बनाए रखना कठिन होगा।

इस प्रश्न के समाधान में एक अन्य विचार भी प्रासंगिक है। धारा 12, जो सुलह अधिकारी के कर्तव्यों से संबंधित है, मूलतः यह प्रावधान करती है कि सुलह अधिकारी को पक्षकारों के बीच समझौता कराने का पूरा प्रयास करना चाहिए। यदि कोई समझौता नहीं हो पाता, तो सुलह अधिकारी को धारा 12 की उपधारा (4) के अनुसार उपयुक्त सरकार को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होता है। इस प्रतिवेदन में सभी प्रासंगिक तथ्य और परिस्थितियों का पूर्ण विवरण तथा वे कारण सम्मिलित होने चाहिए जिनके कारण अधिकारी की राय में समझौता नहीं हो सका। उपधारा (5) यह उपबंध करती है कि यदि प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात उपयुक्त सरकार इस बात से संतुष्ट हो कि विवाद को बोर्ड, श्रम न्यायालय, अधिकरण या राष्ट्रीय अधिकरण को संदर्भित किया जाना चाहिए, तो वह ऐसा संदर्भ कर सकती है। यदि उपयुक्त सरकार ऐसा संदर्भ नहीं करती है, तो उसे अपने कारण अभिलेखित

करने होंगे और उन्हें संबंधित पक्षकारों को संप्रेषित करना होगा। यह प्रावधान उपयुक्त सरकार पर यह दायित्व आरोपित करता है कि वह सुलह अधिकारी की प्रतिवेदन प्राप्त होने के पश्चात संदर्भ न करने के अपने कारणों को अभिलेखित करे और उन्हें संबंधित पक्षकारों को सूचित करे। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब सुलह अधिकारी के प्रयास विवाद को सुलझाने में असफल हो जाते हैं, तो सुलह अधिकारी की प्रतिवेदन प्राप्त होने पर उपयुक्त सरकार सामान्यतः विवाद को न्यायानिर्णयन हेतु संदर्भित करेगी; किन्तु यदि सरकार इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि संदर्भ नहीं किया जाना चाहिए, तो उसे अपने निर्णय के कारणों को संबंधित पक्षकारों को संप्रेषित करना आवश्यक है। यदि अपीलकर्ता का तर्क स्वीकार कर लिया जाए, तो इसका अर्थ यह होगा कि धारा 10(1) के अंतर्गत उपयुक्त सरकार द्वारा आदेश पारित किए जाने के पश्चात भी, उक्त सरकार बिना कोई कारण बताए उस आदेश को निरस्त कर सकती है। यह स्थिति स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 12(5) के प्रावधानों के अंतर्निहित नीति के प्रतिकूल है। हमारे मत में, यदि विधायिका का उद्देश्य उपयुक्त सरकार को धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए आदेश को निरस्त करने की शक्ति प्रदान करना होता, तो वह इस संबंध में एक स्पष्ट प्रावधान करती और उस शक्ति के प्रयोग पर उपयुक्त सीमाएँ भी निर्धारित करती।

हालाँकि, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यदि धारा 10(1) के अंतर्गत औद्योगिक अधिकरण को संदर्भित किया गया कोई विवाद पक्षकारों के बीच सुलझा लिया जाता है, तो ऐसे समझौते को प्रभावी करने का एकमात्र उपाय संदर्भ को निरस्त करना और कार्यवाही को औद्योगिक अधिकरण के क्षेत्राधिकार से बाहर करना होगा। यह तर्क इस धारणा पर आधारित है कि औद्योगिक अधिकरण को अपने समक्ष लंबित विवाद के संबंध में पक्षकारों द्वारा किए गए समझौते की उपेक्षा करनी पड़ेगी और उसे उक्त समझौते के बावजूद विवाद का न्यायानिर्णयन गुण-दोष के आधार पर करना होगा। हम इस तर्क से संतुष्ट नहीं हैं। यह सत्य है कि अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो विशेष रूप से औद्योगिक अधिकरण

को समझौते को अभिलेखित करने और उसके अनुसार निर्णय देने के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 23, नियम 3 के अनुरूप, अधिकृत करता हो। किन्तु यह मान लेना अत्यंत अनुचित होगा कि औद्योगिक अधिकरण, यह सूचित किए जाने के पश्चात कि विवाद पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण रूप से सुलझा लिया गया है, फिर भी विवाद का निपटारा गुण-दोष के आधार पर करने पर आग्रह करेगा। हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि औद्योगिक विवादों के सौहार्दपूर्ण समाधान, जो सामान्यतः औद्योगिक शांति और सौहार्द को बढ़ावा देते हैं, इस अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य है। सुलह अधिकारियों या सुलह बोर्डों के समक्ष हुए समझौतों का विशेष रूप से धारा 12(2) और धारा 13(3) में उल्लेख किया गया है और उन्हें धारा 18 के अंतर्गत बाध्यकारी बनाया गया है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यदि किसी औद्योगिक अधिकरण के समक्ष लंबित विवाद सौहार्दपूर्वक सुलझा लिया जाता है, तो अधिकरण तत्क्षण पक्षकारों के बीच हुए समझौते के अनुसार निर्णय देने के लिए सहमत हो जाएगा। हमारे समक्ष यह भी कहा गया कि औद्योगिक अधिकरणों द्वारा पक्षकारों के बीच हुए समझौतों के आधार पर असंख्य निर्णय दिए गए हैं। इस संदर्भ में हम संयोगवश औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम, 1950 (1950 का अधिनियम 48) की धारा 7(2)(ख) के प्रावधानों का उल्लेख कर सकते हैं, जिसमें स्पष्ट रूप से पक्षकारों की सहमति से औद्योगिक अधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय या आदेश का उल्लेख है। यह सत्य है कि यह अधिनियम अब प्रभाव में नहीं है; किन्तु जब यह प्रभाव में था, तब उक्त अधिनियम के अंतर्गत स्थापित अपीलीय अधिकरण के समक्ष अपीलों का प्रावधान करते समय विधायिका ने पक्षकारों की सहमति से औद्योगिक अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों को मान्यता दी थी। अतः हम इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते कि औद्योगिक अधिकरण के समक्ष लंबित कार्यवाही के दौरान पक्षकारों द्वारा किए गए सौहार्दपूर्ण समझौते को प्रभावी बनाने के लिए संदर्भ को निरस्त करना आवश्यक होगा।

इस संदर्भ में अधिनियम के कुछ अन्य प्रावधानों का उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है, जो संदर्भ कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों पर प्रतिबंध लगाते हैं। धारा 10(3) के अंतर्गत, जहाँ किसी औद्योगिक विवाद को औद्योगिक अधिकरण को संदर्भित किया गया है, वहाँ उपयुक्त सरकार आदेश द्वारा उस विवाद के संबंध में चल रही किसी भी हड़ताल या तालाबंदी को, जो संदर्भ की तिथि पर विद्यमान हो, जारी रखने से रोक सकती है। इसी प्रकार, धारा 33 के अंतर्गत, औद्योगिक अधिकरण के समक्ष कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, कोई भी नियोक्ता (क) विवाद से संबंधित किसी भी विषय के संबंध में, संबंधित कामगारों के हितों के प्रतिकूल, उनके सेवा की शर्तों में, जो कार्यवाही के प्रारंभ से ठीक पूर्व लागू थीं, कोई परिवर्तन नहीं करेगा, अथवा (ख) विवाद से संबंधित किसी भी दुराचार के लिए, संबंधित कामगारों को, बर्खास्तगी या अन्यथा, बिना उस प्राधिकारी की लिखित अनुमति के, जिसके समक्ष कार्यवाही लंबित है, दंडित या सेवा से पृथक नहीं करेगा। धारा 33(1) के प्रावधानों का पालन न करने पर अधिनियम की धारा 31 के अंतर्गत दंडनीय बनाया गया है। ये प्रावधान दर्शाते हैं कि औद्योगिक अधिकरण के समक्ष कार्यवाही लंबित रहने के दौरान, विवाद के पक्षकारों से अपेक्षा की जाती है कि वे यथास्थिति बनाए रखें और ऐसा कोई कदम न उठाएँ जिससे औद्योगिक शांति भंग हो या औद्योगिक अधिकरण के समक्ष निष्पक्ष परीक्षण प्रभावित हो। यदि धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ को निरस्त करने की शक्ति को निहित माना जाए, तो औद्योगिक अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों को किसी भी चरण पर समाप्त कर अतिष्ठित किया जा सकता है और कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पक्षकारों द्वारा वहन किए गए दायित्वों और उत्तरदायित्वों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसी कारण, ये सभी प्रावधान इस अधिनियम के अंतर्गत औद्योगिक विवादों के अनिवार्य न्यायानिर्णयन को संचालित करने वाली एक स्व-निहित संहिता के रूप में कार्य करने के उद्देश्य से बनाए गए हैं, और इसी कारण धारा 15 औद्योगिक अधिकरणों को यह निर्देश देती है कि वे अपनी कार्यवाहियों को शीघ्रता से संचालित करें और कार्यवाही के समापन पर

यथाशीघ्र अपना निर्णय उपयुक्त सरकार को प्रस्तुत करें। इस प्रकार, औद्योगिक न्यायानिर्णयन में समय का सामान्यतः अत्यधिक महत्व होता है और इसलिए अधिनियम औद्योगिक अधिकरणों पर यह दायित्व आरोपित करता है कि वे अपनी कार्यवाहियों का निपटारा यथासंभव शीघ्र करें। यदि उपयुक्त सरकार के पास धारा 10(1) के अंतर्गत पारित अपने आदेश को निहित रूप से निरस्त करने की शक्ति मानी जाए, तो औद्योगिक अधिकरण के समक्ष चल रही कार्यवाहियाँ इस शक्ति के प्रयोग से पूर्णतः निष्प्रभावी हो जाएँगी।

अधिनियम के इन प्रावधानों के अतिरिक्त, सामान्य सिद्धांतों के आधार पर भी यह तर्क स्वीकार करना कठिन प्रतीत होता है कि उपयुक्त सरकार को धारा 10(1) के अंतर्गत अपने द्वारा किए गए आदेश को निरस्त करने की निहित शक्ति होनी चाहिए। यदि नियोक्ता या उसके कामगारों द्वारा किए गए प्रतिवेदन पर उपयुक्त सरकार मामले पर पूर्ण विचार करती है और इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि कोई औद्योगिक विवाद विद्यमान है या आशंकित है, और तत्पश्चात धारा 10(1) के अंतर्गत संदर्भ करती है, तो यह मानने के लिए कोई कारण या सिद्धांत प्रतीत नहीं होता कि उसे अपने आदेश को निरस्त करने और स्वयं द्वारा प्रारंभ की गई संदर्भ कार्यवाही को समाप्त करने की निहित शक्ति प्राप्त है। इस प्रश्न पर विचार करते समय यह ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए अपने आदेश को निरस्त करने की जो शक्ति अपीलकर्ता द्वारा दावा की गई है, वह एक निरपेक्ष शक्ति है; ऐसा नहीं है कि निरस्तीकरण की शक्ति में विवाद के संबंध में पुनः संदर्भ करने का कोई दायित्व निहित हो; और न ही ऐसा है कि इस शक्ति के प्रयोग पर यह शर्त हो कि आदेश के निरस्तीकरण के कारणों को अभिलिखित किया जाए। यदि अपीलकर्ता द्वारा दावा की गई यह शक्ति उपयुक्त सरकार को प्रदान कर दी जाए, तो उपयुक्त सरकार के लिए यह खुला होगा कि वह किसी भी चरण पर अधिकरण के समक्ष कार्यवाही को समाप्त कर दे और औद्योगिक विवाद को किसी अन्य औद्योगिक अधिकरण को संदर्भित भी न करे। धारा 10(1) के अंतर्गत औद्योगिक विवादों को अधिकरणों को संदर्भित करने के संबंध में उपयुक्त सरकार को जो

विवेकाधिकार प्रदान किया गया है, वह अत्यंत व्यापक है; किन्तु जो निरस्तीकरण की शक्ति दावा की जा रही है, वह उससे भी अधिक व्यापक प्रतीत होती है, और उसे सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 21 के आधार पर निहित रूप में दावा किया गया है। हम बिना किसी संकोच के यह निर्णय करते हैं कि सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 21 द्वारा प्रतिपादित व्याख्या का नियम, जहाँ तक वह मूल आदेश को निरस्त करने की शक्ति से संबंधित है, औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 10(1) के प्रावधानों के संदर्भ में लागू नहीं किया जा सकता।

अब उन निर्णयों का उल्लेख करना आवश्यक है जिनकी ओर बहस के दौरान हमारा ध्यान आकर्षित किया गया। अपीलकर्ता की ओर से डॉ. बनर्जी ने इस न्यायालय के निर्णय *मिनर्वा मिल्स लिमिटेड बनाम उनके कामगार*[1] पर विशेष रूप से भरोसा किया है। उनका तर्क है कि महाजन न्यायमूर्ति, जिन्होंने न्यायालय का निर्णय लिखा, ने अपने निर्णय में स्पष्ट रूप से यह कहा है कि अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों से "यह नहीं माना जा सकता कि धारा 7 में यह निहित है कि सरकार किसी अधिकरण को संदर्भित किए गए विवाद को वापस नहीं ले सकती या किसी अधिकरण की नियुक्ति सीमित अवधि के लिए नहीं कर सकती।" तर्क यह है कि यह अवलोकन दर्शाता है कि सरकार लंबित संदर्भ को एक अधिकरण से वापस लेकर उसे दूसरे अधिकरण को संदर्भित कर सकती है, और अपीलकर्ता के अनुसार, वर्तमान मामले में उसने ठीक यही किया है। किन्तु *मिनर्वा मिल्स लिमिटेड* के मामले में उपयुक्त सरकार की धारा 10 के अंतर्गत किए गए अपने आदेश को निरस्त करने की निहित शक्ति का प्रश्न विचारार्थ नहीं था। वहाँ जो मुद्दा उठाया गया था वह यह था कि सरकार के पास सीमित अवधि के लिए अधिकरण नियुक्त करने की शक्ति नहीं है; और यह तर्क दिया गया था कि यदि औद्योगिक विवाद किसी अधिकरण को संदर्भित किए जाते हैं, तो उन सभी विवादों का निपटारा उसी अधिकरण द्वारा किया जाना चाहिए, किसी अन्य

---

1 [1954] एस.सी.आर. 465

अधिकरण द्वारा नहीं, भले ही मूल अधिकरण की नियुक्ति सीमित अवधि के लिए की गई हो। उक्त मामले में पहला अधिकरण 15 जून, 1952 को नियुक्त किया गया था और कुछ औद्योगिक विवाद उसे संदर्भित किए गए थे। अधिकरण की नियुक्ति एक वर्ष के लिए थी। अपने कार्यकाल के दौरान उसने कुछ विवादों का निपटारा कर दिया, किन्तु चार विवाद अभी भी लंबित रहे। इन संदर्भों के निपटान के लिए 27 जून, 1952 को एक दूसरा अधिकरण नियुक्त किया गया। दूसरे अधिकरण के गठन की वैधता को अपीलकर्ता द्वारा चुनौती दी गई और यह तर्क दिया गया कि शेष विवादों का निपटारा केवल पहला अधिकरण ही कर सकता है और वही करना चाहिए। इस तर्क को इस न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया और यह माना कि उपयुक्त सरकार के लिए सीमित अवधि के लिए अधिकरण नियुक्त करना पूर्णतः वैध है। यह ध्यान देने योग्य है कि इस मामले में धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए आदेश को निरस्त करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। उक्त आदेश प्रभावी बना रहा, और सरकार द्वारा उठाया गया एकमात्र कदम यह था कि उसने उन संदर्भों के निपटान के लिए एक नया अधिकरण गठित किया, जिनका निपटारा पहले अधिकरण द्वारा नहीं किया गया था। वास्तव में, किसी विवाद को पहले अधिकरण से वापस लेने का कोई अवसर ही नहीं था; पहला अधिकरण अस्तित्व में नहीं रहा था, और इसलिए ऐसा कोई अधिकरण नहीं था जो धारा 10(1) के अंतर्गत पहले से संदर्भित शेष विवादों का निपटारा कर सके। इसी कारण सरकार ने उन विवादों के निपटान के लिए दूसरे अधिकरण की नियुक्ति की। हमारे मत में, *मिनर्वा मिल्स लिमिटेड*[1] का निर्णय इस प्रस्ताव के समर्थन में उद्धृत नहीं किया जा सकता कि अपीलकर्ता के पास धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ आदेश को निरस्त करने की शक्ति है।

इस न्यायालय के निर्णय *स्ट्रॉबोर्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम गुट्टा मिल वर्कर्स यूनियन* (1) का भी हवाला इस प्रस्ताव के समर्थन में दिया गया है कि अपीलकर्ता के

---

1 [1954] एस.सी.आर. 465

पास धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए अपने आदेश को निरस्त करने की निहित शक्ति है। इस मामले में उत्तर प्रदेश राज्य की सरकार ने 18 फरवरी, 1950 को एक औद्योगिक विवाद को श्रम आयुक्त के समक्ष संदर्भित किया था और आयुक्त को निर्देश दिया था कि वह अपना निर्णय 5 अप्रैल, 1950 से बाद में न दे। जब कार्यवाही आयुक्त के समक्ष लंबित थी, तब दो अतिरिक्त मुद्दे भी उसे संदर्भित किए गए। अंततः निर्णय 13 अप्रैल को दिया गया और उसे वैध बनाने का प्रयास 26 अप्रैल को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल द्वारा एक अधिसूचना जारी कर किया गया, जिसके द्वारा निर्णय देने की अवधि को पूर्वप्रभावी रूप से 30 अप्रैल, 1950 तक बढ़ा दिया गया। इस न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अवधि को पूर्वप्रभावी रूप से बढ़ाने वाली अधिसूचना अवैध थी। चूँकि निर्णय मूल अधिसूचना में निर्धारित अवधि के बाद दिया गया था, इसलिए वह शून्य था। तथापि, यह तर्क दिया गया कि निर्णय की वैधता के प्रश्न पर विचार करते समय दास न्यायमूर्ति (जैसा कि वे उस समय थे) ने यह कहा था— "इन परिस्थितियों में, यदि राज्य सरकार ने यह विचार किया कि उन दो अतिरिक्त मुद्दों के सम्मिलन से मूल आदेश में निर्दिष्ट समय उस उद्देश्य के लिए अपर्याप्त हो जाएगा, तो उसे पूर्ववर्ती अधिसूचना को निरस्त कर देना चाहिए था और एक नई अधिसूचना जारी कर सभी मुद्दों को निर्णायक के समक्ष संदर्भित करते हुए एक नई समय-सीमा निर्धारित करनी चाहिए थी जिसके भीतर उसे अपना निर्णय देना था। राज्य सरकार ने वह मार्ग नहीं अपनाया।" जैसा कि हम इस निर्णय को पढ़ते हैं, हम अपीलकर्ता की इस धारणा को स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त नहीं हैं कि उपर्युक्त उद्धृत अंश इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। संदर्भ में पढ़ने पर उक्त अंश प्रतीत होता है कि वह अपीलकर्ता की ओर से डॉ. टेकचंद द्वारा प्रस्तुत तर्क को व्यक्त करता है। अपीलकर्ता ने मूलतः यह तर्क दिया था कि यदि राज्य सरकार ने यह समझा कि बाद की अधिसूचना द्वारा आयुक्त को संदर्भित किए गए नए मुद्दों के कारण उसके लिए निर्धारित समय के भीतर निर्णय देना कठिन हो जाएगा, तो स्थानीय सरकार को मूल संदर्भ को निरस्त कर देना चाहिए था, एक नया व्यापक संदर्भ

करना चाहिए था और निर्णय देने के लिए आवश्यक समय प्रदान करना चाहिए था। चूँकि ऐसा नहीं किया गया, इसलिए स्थिति को मूल रूप से निर्धारित समय को पूर्वप्रभावी रूप से बढ़ाने वाली आक्षेपित अधिसूचना द्वारा सुधारा नहीं जा सकता था। इसी तर्क के संदर्भ में वह कथन, जिस पर भरोसा किया गया है, अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा किया गया प्रतीत होता है। यदि यही सही स्थिति है, तो इन टिप्पणियों के आधार पर कोई तर्क निर्मित नहीं किया जा सकता। यह स्वीकार किया गया है कि इस मामले में धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ आदेश को निरस्त करने की उपयुक्त सरकार की शक्तियाँ का प्रश्न न तो विचारार्थ आया था और न ही उस पर निर्णय दिया गया था।

अपीलकर्ता के मामले के समर्थन में जिस तीसरे निर्णय का उल्लेख किया गया है, वह *टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन, अमृतसर बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य*[1] में बिशन नारायण न्यायमूर्ति का निर्णय है। बिशन नारायण न्यायमूर्ति का प्रतीत होता है कि उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ आदेश को निरस्त करने की शक्ति, सामान्य उपबंध अधिनियम की धारा 21 का सहारा लेकर, निहित रूप में मानी जा सकती है, क्योंकि उनके विचार में ऐसी शक्ति के प्रयोग द्वारा उपयुक्त सरकार औद्योगिक शांति और सौहार्द को बनाए रखने के उद्देश्य को प्राप्त कर सकती है। निर्णय से यह स्पष्ट होता है कि माननीय न्यायाधीश इस तथ्य से अवगत थे कि "यह निष्कर्ष किसी ट्रेड यूनियन की वार्ता शक्ति को कमजोर कर सकता है और व्यक्तिगत प्रतिष्ठानों को अपने-अपने कामगारों के साथ सीधे व्यवहार करने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है, किन्तु यह नीति का प्रश्न है, जिससे मुझे इन कार्यवाहियों में कोई सरोकार नहीं है।" वर्तमान प्रश्न पर विचार करते समय हम किसी भी प्रकार के नीतिगत प्रश्नों से संबंधित नहीं हैं। तथापि, यह कहना प्रासंगिक होगा कि जिस निष्कर्ष पर हम वर्तमान मामले में पहुँचे हैं, उसके आधार पर माननीय न्यायाधीश द्वारा व्यक्त आशंकाओं को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती। जैसा कि हम पहले ही

---

1 ए.आई.आर[1957] पंजाब 255

इंगित कर चुके हैं, अधिनियम की रूपरेखा स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि एक बार उपयुक्त सरकार द्वारा धारा 10(1) के अंतर्गत संदर्भ आदेश कर दिया जाता है, तो औद्योगिक विवाद के संचालन और उसके अंतिम निर्णय का दायित्व औद्योगिक अधिकरण पर छोड़ दिया जाता है। अतः हमें यह घोषित करना होगा कि बिशन नारायण न्यायमूर्ति द्वारा यह मत ग्रहण करना कि उपयुक्त सरकार को अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए अपने ही आदेश को निरस्त करने की शक्ति प्राप्त है, त्रुटिपूर्ण है।

केरल उच्च न्यायालय का निर्णय *इय्यप्पेन मिल्स (प्राइवेट) लिमिटेड, त्रिचूर बनाम त्रावणकोर-कोचीन राज्य*[1]अधिक सहायक नहीं है, क्योंकि इस मामले में माननीय न्यायाधीशों ने यह मत व्यक्त किया प्रतीत होता है कि वह पहला अधिकरण, जिसके समक्ष औद्योगिक विवाद लंबित था, उस समय अस्तित्व में नहीं रहा था जब स्थानीय सरकार द्वारा विवाद को न्यायानिर्णयन हेतु दूसरे अधिकरण को संदर्भित किया गया। यदि यही वास्तविक स्थिति थी, तो माननीय न्यायाधीशों का निष्कर्ष इस न्यायालय के *मिनर्वा मिल्स लिमिटेड*[2] के निर्णय द्वारा समर्थित होगा।

तत्पश्चात, *हरेंद्रनाथ बोस बनाम द्वितीय औद्योगिक अधिकरण*[3] में सिन्हा न्यायमूर्ति द्वारा की गई टिप्पणियों के संबंध में यह स्पष्ट है कि माननीय न्यायाधीश ने यह मत समर्थन करने में त्रुटि की कि उपयुक्त सरकार धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए अपने आदेश को निरस्त कर सकती है, और इसके लिए उन्होंने इस न्यायालय के *स्ट्रॉबोर्ड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड*[4] के निर्णय में पाई गई टिप्पणियों पर भरोसा किया। हम पहले ही कह चुके हैं कि उक्त टिप्पणियाँ वास्तव में उस मामले में इस न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा

---

1 [1958] आई.एल.एल.जे. 50

2 [1954] एस.सी.आर 465

3 [1958] आई.एल.एल.जे. 198

4 [1953] एस.सी.आर 439

प्रस्तुत तर्कों का ही भाग थीं और वे माननीय न्यायाधीश द्वारा की गई कोई *इतरोक्ति* टिप्पणियाँ नहीं थीं।

अंतिम मामला, जिसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है, वह राजामन्नार मुख्य न्यायाधीश तथा वेंकटरामा अय्यर न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए निर्णय *साउथ इंडिया एस्टेट लेबर रिलेशंस ऑर्गनाइजेशन बनाम मद्रास राज्य*[5] का है। इस मामले में मद्रास सरकार ने अधिनियम की धारा 10 के अंतर्गत अपने द्वारा किए गए संदर्भ में संशोधन करने का प्रयास किया था और इस संशोधन की वैधता को न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। इस आपत्ति को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि सरकार के लिए यह खुला था कि वह ऐसे किसी विषय के संबंध में, जो पूर्ववर्ती संदर्भ में शामिल नहीं था, एक स्वतंत्र संदर्भ कर सकती थी। यह कि उसने इसे एक अतिरिक्त संदर्भ के बजाय विद्यमान संदर्भ में संशोधन के रूप में किया, मात्र एक तकनीकी बात है, जो विनिर्दिष्ट आदेश याचिका की कार्यवाही में हस्तक्षेप के योग्य नहीं है। आपत्ति केवल रूप की थी और उसमें कोई सार नहीं था। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या उपयुक्त सरकार धारा 10 के अंतर्गत मूल रूप से किए गए संदर्भ में, उन नए विषयों के संबंध में जो मूल संदर्भ में शामिल नहीं थे, संशोधन कर सकती है, और न्यायालय ने यह माना कि जो कार्य उपयुक्त सरकार एक स्वतंत्र संदर्भ करके कर सकती थी, वही उसने मूल संदर्भ में संशोधन करके करने का प्रयास किया। यह निर्णय अपीलकर्ता की सहायता नहीं करता, क्योंकि वर्तमान मामले में हम धारा 10(1) के अंतर्गत किए गए संदर्भ में संशोधन करने या उसमें कुछ जोड़ने की सरकार की शक्ति पर विचार नहीं कर रहे हैं। हमारा वर्तमान निर्णय इस

---

5 ए.आई.आर 1955 मद्रास 45

संकीर्ण प्रश्न तक सीमित है कि क्या उपयुक्त सरकार द्वारा धारा 10(1) के अंतर्गत किया गया संदर्भ आदेश बाद में उसके द्वारा निरस्त या अतिष्ठित किया जा सकता है।

अतः हमें पटना उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों द्वारा दिए गए इस निष्कर्ष की पुष्टि करनी होगी कि अपीलकर्ता द्वारा पहली दो अधिसूचनाओं को निरस्त करने हेतु जारी की गई अधिसूचना अवैध तथा अधिकारा है।

अब हम उस प्रश्न पर आते हैं कि वर्तमान अपीलों में अंतिम आदेश किस रूप में पारित किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने राज्य सरकार के विरुद्ध *उत्प्रेषण* स्वरूप की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका जारी करते हुए आक्षेपित अधिसूचना को अभिखंडित किया है। तथापि, इस न्यायालय द्वारा *मद्रास राज्य बनाम सी. पी. सारथी* (1) में यह प्रतिपादित किया गया है कि धारा 10(1) के अंतर्गत संदर्भ करते समय उपयुक्त सरकार एक प्रशासनिक कार्य करती है और यह तथ्य कि उसे अपने कार्य के निर्वहन से पूर्व औद्योगिक विवाद के तथ्यात्मक अस्तित्व के संबंध में एक मत बनाना होता है, उसके कार्य के प्रशासनिक स्वरूप को कम नहीं करता। ऐसी स्थिति में, हमारे मत में आक्षेपित अधिसूचना के संबंध में अपीलकर्ता के विरुद्ध *परमादेश* स्वरूप की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका जारी करना अधिक उपयुक्त होगा। हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि चूँकि अपीलकर्ता द्वारा पहली दो अधिसूचनाओं के माध्यम से संदर्भित दोनों औद्योगिक विवाद काफी समय से अधिकरण के समक्ष लंबित हैं, अतः यह अपेक्षित है कि अधिकरण इन संदर्भों को अपने अभिलेख पर लेकर यथाशीघ्र उनका निपटारा करे।

नतीजतन, अपील विफल हो जाती हैं और उन्हें लागत के साथ खारिज किया जाना चाहिए।

याचिकाएं खारिज कर दी गईं।